ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-8* September- 2017
Innovation The Research Concept

"प्रेमाश्रम" बरास्ते दालमंडी

रामाश्रय सिंह
वरि०स० प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

प्रेमचन्द उन उपन्यासकारों में से थे जो पेड़ का पत्ता देखकर सन्तोष नहीं करते, वरन उसकी जड़ें खोदते हैं, चाहे उसकी जड़ें पाताल में क्यों न गई हों। नारी समस्या और वेश्यावृत्ति की पड़ताल करते हुए उन्होंने धर्म, कानून और सम्पति पर अच्छी तरह प्रकाश डाला था। सामाजिक अन्याय के विष–वृक्ष की जड़ों को उन्होंने "प्रेमाश्रय" उपन्यास के माध्यम से दालमंडी की चर्चा की है। यह उपन्यास आधुनिक समाज को पुनः पढ़ने के लिए मजबूर करेगा, जैसे–सबसे नीच हम हैं। सबसे बड़े पापी दूराचारी अन्यायी हम हैं। जो अपने को शिक्षित, सभ्य उदार और उच्च समझते हैं। मेरे शिक्षित भाइयों ही के बादौलत दालमंडी आबाद है।[1] यहीं मेरी शोध लेख का सार है।

मुख्य शब्द : विष–वृक्ष, प्रेमाश्रम, दालमंडी, बरास्ते, बादौलत, बॉट–चूँटकर, चकलों, नजराना, मससेहतों, शुचिता, कठधरे, आलपीन, धिक्कारते, पिलती डिगरियाँ, लुढकता, उपाधिधारक।

प्रस्तावना

प्रेमाश्रम पहले महायुद्ध के बाद का उपन्यास है। यूरोप की बड़ी–बड़ी शक्ति युद्ध के रास्ते संकट हल करने की कोशिश की, गुलाम देश की हालत और खराब हो गयी। पश्चिमी ताकतों ने जोर जुल्म बढ़ाया। आजादी चाहने वाली जनता को जालियावाला बाग मिला। आज स्थिति बदल गयी है। अब कोई मनमाने ढंग से बॉट–चूँटकर लूट नहीं सकता। डर पैदा हो गया है। जैसे सोवियत रूस से। हिन्दुस्तान के लोग अंग्रेजों की गुलामी का जुआ उतार फेंका, फिर भी हमें शर्म है– आज भी दालमंडी आबाद हैं। चौक में चहल पहल है। चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है। ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फँसाई है। ये कठपुतलियाँ हमने ही बनाई हैं।[2]

जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती कर्मचारी, अन्यायी, महाजन, स्वार्थी बंधु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहाँ दालमंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता हैं? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद–दर सूद का अंत होगा, उसी दिन दालमंडी उजड़ जायेंगी, ये चिड़ियाँ उड़ जायेंगी, इसके पहले नहीं।[3] ये मुद्दे समय और समाज के भीतर धड़कते और धधकते हुए शोले हैं। कई तरह के विस्थापनों के इस दौर में हमारे पैर कहाँ टिकें होंगे? यह हमें तय करना है। पूँजीवाद, औद्योगीकरण से उपजे उपभोक्तावाद व बाजारवाद के परिणाम स्वरूप समय व समाज दोनों में और दम तोड़ती दिखाई देती है। असत्य में जीवन की जटिलताओं के भीतर सौहार्द्र की जो एक धुंधली–सी रेखा मानवीय रिश्तों में दिखाई पड़ जाती है, उसी के अन्दर से एक शब्द निकलकर हमारे अनुभव संसार मे पैठ जाता है, वह है दालमंडी।

प्रेमचन्द तटस्थता के हामी नहीं थे। जनसाधारण के आन्दोलन और संघर्षो को लेकर साहित्य रचते थे। ताकि वह अमर हो जाये। आजाद–रौ आदमी हूँ, मससेहतो का गलाम का गलाम नहीं।[4]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रेमचन्द नारी समस्या का व्यापक चित्र बनाने के साथ–साथ दालमंडी जैसी समस्या को हिन्दी साहित्य में पहली बार देश की स्वाधीनता की समस्या से जोड़ दिया है। हिन्दुस्तान की नई पीढ़ी के लिए छोड़ दी है। अपने पीछे आने वालों के लिए छोड़ी है। जिस देश में जालपा जैसी वीर नारी हो, देवीदीन जैसा सदा जवान रहने वाला सच्चा देश भक्त हो, वहाँ गरीबों को लूट कर विलायत का घर भरने का काम ज्यादा दिन तक नहीं चल सकता। यानी 'दालमंडी' जैसी जगह का अब कोई औचित्य नहीं। नये रास्ते ढूँढकर नई प्रेरणा लेने की जरूरत है। जिससे जीवन की असलियत की छान–बीन और गहराई से होगी। भ्रम के पर्दे उठेंगे। फिर भी उस देश का यारों क्या कहना! और क्यों कहना?[5] कहने से बात बेकार बढ़ती है। तो भी मैं उस देश के बारे में कुछ कहने बैठा हूँ, जो दुनियाँ का सबसे अधिक सफाई–पसंद देश है। यह सही है कि वहाँ कीचड़ से

भी होली खेली जाती है। लेकिन यह बात सही है कि वातावरण में सफेदी लाने के लिए विशिष्ट रसायन पाये जाते हैं। संसार की सबसे पवित्र नदी उसी देश में बहती है जो मैल को ही नहीं पाप को भी काट देती है। सबसे पवित्र पर्वत–माला उसी देश के केशों में लिपटी है और उस देश की मिट्टी तो इतनी पवित्र है कि उससे तिलक करने की सलाह दी जाती है, आज भी वहाँ की जनता अपने नेताओं के चरणों से लिपटी हुई उस पवित्र धूल को माथे लगाकर धन्य होती है। उस देश की माटी स्वयं तो पवित्र है ही, अपने स्पर्श मात्र से शुचिता प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता रखती है। जब इस देश की माटी इतनी पवित्र है तो इस देश में दालमंडी की क्या आवश्यकता है? आज देश गुलाम नहीं, फिर भी ऐसी क्या जरूरत है? कि हर शहर के चौराहों पर इसकी बड़ी मंडी है। क्या इसकी सफाई की मांग नहीं हो सकती? क्या हर कोई सफाई दे सकता है? गौर करने की बात है कि सफाई करने का नेतृत्व भी ऐसे ही लोगों के हाथ में रहता आया है जो देश को ठीक–ठाक जानते हैं। मैं बताना–चाहता हूँ कि ज्यादा जानने वाले अपने देश को ठीक से न पहचानने के लिए अभिशप्त रहे हैं। यहीं कारण है कि दालमंडी आबाद है।

कहना न होगा कि प्रेमचन्द नारी को मनुष्य का दर्जा देने के लिए लड़ रहे थे। बत्तीस करोड़ में सोलह करोड़ को जानवर के बदले इंसान समझने के लिए। क्या प्रेमचन्द की लड़ाई जारी है? प्रेमचन्द ने विस्तार से दिखलाया है कि इस समाज व्यवस्था में सम्पत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय नहीं देते, बल्कि वेश्याओं को जन्म देते हैं। दालमंडी तैयार करते हैं। यहाँ से दालमडी शीर्षक का अभिप्राय समझ में आने लगेगा। प्रेमचन्द ने सामाजिक संबन्धों की छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है। उन्होंने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरें में खड़ा कर दिया है। जहाँ से उपन्यास का और पाठकों की नजर बचाकर भाग जाना उसके लिए सम्भव नहीं है। दहेज, अनमेल विवाह, पति का संदेह, घर से निकालना और वेश्या की देहरी। मानों उस विवाह–प्रथा और वेश्यावृति में कोई अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही। आज भी जिस समाज में शिक्षित लोग विवाह का मतलब कन्या विक्रय समझते हो? उससे वेश्यावृत्ति कौन उठा सकता है? सेवासदन की पात्रा सुमन और भोली के वार्तालाप से साफ झलकता है, जो आलपीन की तरह चुभती भी है– मेरे माँ–बाप ने भी मुझे एक बूढे मिया के गले में बाँध दिया, उसके यहाँ दौलत थी, सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी मैंने किसी तरह छह महीने तो काटे, आखिर निकल खड़ी हुई।[6] प्रेमचन्द यह दिखलाते हैं कि नारी की पराधीनता और वेश्यावृत्ति हिन्दूओं और मुसलमानों दोनों में हैं। वह इस्लामी संस्कृति और हिन्दू संस्कृति का डंका बजाने वालों से कहते हैं– देखों यह हैं तुम्हारी संस्कृति और हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों की स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराती हैं। धिक्कारते हुए कहते हैं तुम्हारे यहाँ नारीत्व का तभी सम्मान किया जाता है जब वह बिकाऊ हो। प्रेमचन्द नारी के आदर और सम्मान की समस्या को तीखेपन से और बार–बार पाठक के सामने लाते हैं। इस सत्य का सामना करने की ताव बड़े–बड़े समाज शक्तियों, शास्त्रियों में आज भी नहीं है। पहले महायुद्ध के दिनों की तो बात से क्या।

आज बींसवीं सदी के भारतीय समाज में धीरे–धीरे एक परिवर्तन हो रहा है। साम्राज्य वादी सामंती जुए के नीचे जनता कसमकसाने लगी है। समाज का सबसे दलित अंग नारी–राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता, दोनों से पिसती हुई नारी–स्वाधीनता के लिए हाथ फैला रही है। प्रेमचन्द इस परिवर्तन को भी देख रहे थे। आज के समय में, समाज के मन में, एक नई स्पूर्ति, एक नया विश्वास जगाता है।

प्रेमचन्द ''प्रेमाश्रम'' उपन्यास ने बरास्ते समाज के ये तथाकथित शिक्षित लोग जिनके लिए मनुष्यता कुछ नहीं थी, धन सब कुछ था। कितने कायर व झूठे थे। प्रेमचन्द कलात्मक ढंग से दिखाया हैं। यही नहीं पतिव्रता और सतीत्व के हामी सज्जन लड़के–लड़की में जो चीज सबसे पहले देखते थे, वह उनकी राशि और वर्ण था। जितना भी ज्यादा पढ़े हों, यानी ऊँची डिगरियाँ पास हो, उतना ही ज्यादा रकम मॉगों। प्रेमचन्द ने शिक्षितों की पोल खोल दी है। विवाह और सत्तीत्व के नाम पर लेनदेन करते थे। आज भी हो रहा है। यही कारण है कि दालमंडी आबाद हैं? असल में यहाँ मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। उस तरह पुरानी संस्कृति को तोड़–मरोड़ कर नारी की पराधीनता को चित्रित किया है, इस पर विश्वास तो नहीं होता। वरन् उसकी निस्सहायता, पराधीनता उसके साथ पशुओं और दासों जैसी व्यवहार पर नजर अवश्य डाली है। मजबूरी क्या नहीं करा सकती? मेरा सुझाव है कि सब कुछ करा सकती है, लेकिन वेश्यावृत्ति, देह व्यापार, या दालमंडी में जाने से पहले सौ–सौ बार सोचना होगा। ये तय है कि प्रेमचन्द ने नकली आदर्शों की रामनामी खींचकर पंडितो, और मौलवियों, शिक्षित समाज के प्रतिष्ठित सज्जनों और धनपतियों का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रकट कर दिया।[7] जबकि कबीर ने ऐसी ताकत नहीं दिखती है।इसका ज्वलन्त उदाहरण रामरहीम सच्चा डेरा में देख सकते है।

मेरे कहने का उद्‌देश्य है कि दालमंडी (वेश्यावृत्ति) को पैदा करने वाले और पालने–पोसने वाले स्वार्थी समाज में मौजूद हैं। इन स्वार्थी के निर्मूल हुए बिना किसी तरह का समाज में सुधार संम्भव नहीं है। महंत रामदास और बूढ़े किसान चेतू की घटना से समझा जा सकता है। कि ये स्वार्थी किस तत्परता और क्रूरता से अपनी रक्षा करते हैं। यही नहीं धर्म और कानून उसकी मदद करने लगते हैं। पुनः मुझे वह लाइन याद आ ही जाती है– उस देश का यारों क्या कहना! उन लोगों को चेतावनी है, जो नजराना, रिश्वत, और सूद–दर सूद का अंत किये बिना ही आत्म सुधार से समाज को बदलना चाहतें हैं। समाज सुधार का एक ही रास्ता हैः– सामाजिक सम्बन्धों को बदलना। आत्मसुधार से गुंजाइस कम ही दीखती है। प्रेमाश्रम बरास्ते में उन्हीं अत्याचारी जमींदारों। रिश्वतखोरी कर्मचारियों, अन्यायी महाजनों, स्वार्थी की कहानी से "दालमंडी" शीर्षक की सार्थकता सिद्व होती है।

उपन्यास की भाषा में क्षेत्रीय शब्दों की बहुतायत है। शब्द उपन्यास के प्रवाह में प्रमाणिकता प्रदान करते हैं। उन्हें पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि यदि उनका अनुवाद कर दिया जाय तो पूरी कहानी की तले की जमीन भूर–भूरी हो जायेगी। जो पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली, उसको सपोर्ट करने वाली, सामाजिक व्यवस्था, उसकी नीतियों को कार्यरूप देने वाले व्यक्तियों की मानसिकता, एवं इस प्रक्रिया द्वारा स्थानीय संस्कृति, या पड़ने वाले प्रभाव को समझने की दृष्टि से सहायक है। अरूण प्रकाश ने खूबसूरत अंदाज में लिखा है– समाज के बाजार बनने की प्रक्रिया में व्यक्ति व्यक्तित्व हीनता की तरफ लुढ़कता जाता है। आखिर वह दिन डिब्बा बंद जिंस (दालमंडी) बन जाती है।[8] इसके पीछे विडम्बना यह भी है कि निजता के नाम पर लोगों की निजता में ताक–झाँक बढ़ी है। दाम्पत्य जीवन प्रभवित हुआ है। श्रम शक्ति का महत्व कम हुआ है। निजीकरण ने शिक्षा की जो दुर्गति की है वह किसी अक्षम्य अपराध से कम नहीं है। आज की विचार हीनता, तनावग्रस्त मनःस्थिति तथा वृद्धावस्था का एकाकीपन भूमण्डलीकरण के सह उत्पाद हैं। इससे आतंकवाद, एवं साम्प्रदायिकता घृणामंडी जैसी, को वैश्विक प्रसार दिया है। दालमंडी आतंकवाद, पूँजीवादी शक्तियों के हाथ का खिलौना है। बाजार की शक्तियाँ इसको अपने निहित स्वार्थों के लिए उपयोग करती हैं। बाजार की संस्कृति में दायित्व बोध सिर्फ लाभ तक सीमित है। वह परिवार तथा समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व बोध का अपहरण रहा है। आखिरकार जिसके अस्तित्व का सत्तर प्रतिशत भस्म हो चुका हो, उसका तिरस्कार करके भी क्या लाभ? दालमंडी भू–मण्डलीकरण की कोख से पैदा हुए निविड़ एकाकीपन के बरअक्स साहचर्य, सहयोग, समानता और संवेदनशीलता का जो विकल्प प्रस्तुत करता है।[9] जीने का एक तरह से संकेत देता है। प्रेमचन्द के दृष्टिकोण की खूबी इस बात में है कि वह समाज में देख सकते हैं। कि कौन सी चीज मर रही है। कौन सी चीज उग रही है। वह समाज को गतिशील क्रम के रूप में देखते हैं।

निष्कर्ष

''प्रेमाश्रम'' की मूल कथा किसान–समस्या है। ध्यान रहे कि जमींदार संघर्ष को लेकर नहीं रची गयी है। क्योंकि संघर्ष सभी जमींदारों के विरूद्ध नहीं है। असली समस्या है देशी–विदेशी शिक्षा की है। ''प्रेमाश्रम'' का पात्र ज्ञानशंकर पश्चिमी शिक्षा–दीक्षा से प्राप्त पाश्चात्य संस्कारों की उपज है। प्रेमचन्द ने शायद यह कहना चाहा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली इंसान को ज्ञानशंकर, इर्फानअली ज्वालासिंह और प्रियनाथ बनाना सिखाती है। प्रेमचंद इस प्रकार की शिक्षा के पक्ष में बिल्कुल नहीं थे। उनकी आदर्श शिक्षा प्रणाली गुरूकुलों की शिक्षा प्रणाली थी। फिर भी ''प्रेमाश्रम''की मूल कथा किसान–जमींदार संघर्ष–गाथा ही है। समाज जहाँ खड़ा था वहीं खड़ा रह गया, नहीं और पीछे हट, गया पुराने ज्ञानियों ने सारे झगड़ों की जिम्मेदार जर, जमीन, और जन रखी थी। आज उसके लिए केवल एक ही शब्द काफी है सम्पत्ति। सम्पत्ति के मूल में दालमंडी की उपज है।

प्रेमचंद (दिसम्बर,1931) में हमारी शिक्षा व्यवस्था के विषय में अदहन पत्रिका जनवरी–मार्च 2017 के आलेख के माध्यम से अपनी बात कहना चाहूँगा–यूनवर्सिटी तो भारत में कोई है ही नहीं, हॉ ग्रेजुएट बनाने के कई कारखाने हैं। उस लिहाज से संयुक्त प्रान्त भारत का लंकाशायर या बम्बई हैं, यहाँ ऐसे–ऐसे पॉच बड़े–बडे कारखाने है। जहाँ युवकों को दुर्व्यसन फिजूल खर्ची, विलासिता और झूठे अभिमान की शिक्षा दी जाती है। बी0ए0 पास होने का अर्थ व्यावहारिक रूप से यही है कि अमूक युवक इन दुर्गुणों में पास हो चुका है। यह सिवा दफ्तर में कलम घिसने के, औंर किसी काम का नहीं। उस गरीब का कोई दोष नहीं। वह तो खुद इस मशीन में बना है। आखिर उसने जो कुछ देखा है, तो कुछ पढ़ा है, वही आदर्श तो उसके सामने है। किसी यूनिवार्सिटी में चले जाइयें वहाँ आपको भारतीयता की कहीं गंध भी न मिलेगी, वहाँ अंग्रेजी भाषा का, अंग्रेजी वेश का, अंग्रेजी आचार का ही आधिपत्य है। त्याग और प्रेम के आदर्शो को एक सिरे से बहिष्कार कर दिया गया है। वहाँ वही विद्वान है, जो इंग्लैंण्ड से कोई बड़ी सी उपाधि लाया है। वहाँ जो कुछ है, उपाधि है। भारत की व्यक्तिगत आय से अधिक से अधिक तीन रूपया महीना है, पर हमारा उपाधिधारी युवक साठ रूपये से कम से गुजर ही नहीं कर सकता। वह अकेला बीस आदमियों का हिस्सा चट कर जाता है, और उसके अध्यापक कम से कम दो सौ व्यक्तियों के! भारत जैसे गरीब देश में ही यह अंधेर हो सकता है।

जिस विद्यालय में हमारे युवकों के चरित्र का निर्माण होता है, वहाँ स्वार्थकता अपने नग्न रूप में खड़ी हो, यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है। विभागों से तो हमें शिकायत नहीं, उनका अस्तित्व बल पर ही पर पशुबल से जितना चाहते हैं, हमसे वसूल करते हैं। जैसे चाहते हैं खर्च करते, हम विवश हैं। लेकिन विद्यालय तो हमारी सभ्यता के आदर्श हैं। हम ऐसे विद्यालयों को अपनी महान सभ्यता का उत्तराधिकारी नहीं समझते, बल्कि उसके लिए कलंक समझते है।[9]

प्राचीन काल में विद्यालयों के संस्कार की उपज एक मशाल से दी जाती थी। जो एक हाथ से दूसरे हाथ और एक युग से दूसरे युग तक चलती रहती थी। यह मशाल एक भयंकर वस्तु है, इसने कितने ही आन्दोलनों को उठाया है, कितनी ही हलचल जगायी है। यह क्रान्ति भावना की बोधक है, वह आग है, जो घास–फूस और गन्दगी को जलाकर साफ कर देती है। अगर हम उन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आन्दोलन से भयभीत हो जायें, जो इस आग के फैलाने से पैदा होते है। तो हमें विद्यालयों से दूर ही रहना चाहिए। इसके बरअक्स सच्ची बातें और है, जो बयां करती हैं कि –बुद्धिमान मनुष्य में दृष्टि का विस्तार, विचार की स्वाधीनता और नवीनता व अन्य भावों को समझने की शक्ति होती है। वह हमेशा उन विचारों से सहानुभूति रखने को तैयार रहता है, जिनसे उसे मतभेद है। इन सब विचारों से प्रेरणा लेकर एक कदम आगे की बात करना चाहूँगा कि पराधीनता के प्रभाव और मनोभाव दोनों से पूर्ण मुक्ति अभी बाकी है? इसके लिए हमें विदेशियों द्वारा गुलाम बनाए रखने की

मानसिकता से प्रेरित इतिहास को बदलते हुए अपने समाज, राष्ट्र और स्वतंत्रता संग्राम को सही दृष्टि से देखना होगा। आज भारत विश्व की सबसे शक्तिशाली सेनाओं वाला एक देश में होने के साथ, मंगलग्रह तक यान भेजने में सक्षम, विश्व के अग्रणी आईटी उद्योगों में से एक, व सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे समृद्धि और युवा देश के रूप में स्थापित है। श्री अरविन्दों जैसे लोग युग प्रवर्तक राष्ट्रवादी थे, गुरू तेग बहादुर श्रद्धेय हो जिन्होंने धर्म की रफ्तार के लिए आत्म बलिदान दिया। महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्वाभियान के प्रतीक थे, वहीं छत्रपति शिवाजी हिंदवी स्वराज्य के महानायक। इतनी गौरव शाली परपरा के बावजूद दालमंडी आबाद हैं। स्वतंत्रता संग्राम के क्रांन्तिकारी आन्दोलन की घटनाओं को एकीकृत रूप में देखें तो दृश्य बहुत बड़ा और प्रभावी नजर आता है। दालमंडी की मुक्ति स्वतंत्रता के सत्तर साल के बाद एक नई उर्जा प्रदान कर सकती है। ढेर सारी उम्मीदों के साथ पूरा देश विकास यात्रा की अनूठी डगर पर बढ़ चला है। यही से सब तक पहुँचे आजादी। आबाद न हो दालमंडी यहीं मेरा नारा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *प्रेमचन्द और उनका युग– रामविलास शर्मा, पृ0 सं0 43.*
2. *प्रेमाश्रम–प्रेंमचन्द,– रामविलास शर्मा, पृ0 सं0 43.*
3. *वही पृ0 43।*
4. *हंस मई 1937 पृ0 914*
5. *हिन्दुस्तान 6 अगस्त 2017 उस देश का यारो क्या कहना मनोहर श्याम जोशी पोर्ट्रेट मनोज सिन्हा।*
6. *प्रेमचन्द और उनका युग–रामविलास शर्मा–सेवासदन से, पृ0 36.37।*
7. *वहीं पृ0 31*
8. *चौपाल– कथाशिखर स्वयं प्रकाश, पृ0 33–97*
9. *अदहन पत्रिका अंक 4 जनवरी मार्च 2017 पाथेय से।*